संक्षिप्त परिचय

जन्म : 12 फरवरी 1969 मुम्बई, मूल निवासी जौनपुर (उ0 प्र0)

शिक्षा : प्राथमिक शिक्षा गाँव के समीप विद्यालय में, बचपन से ही मेधावी। उच्च शिक्षा इलाहबाद विश्वविद्यालय। प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता प्राप्त की। उच्च शिक्षा (विधि स्नातक, द्वितीय वर्ष) में छोड़ा और डिग्री व प्रमाण पत्रों का बहिष्कार किया। इसी समय उत्तर प्रदेश पी.सी.एस.की प्रारम्भिक परीक्षा उत्तीर्ण की, आगामी परीक्षा के लिए लोक सेवा आयोग से आमंत्रण (परंतु बहिष्कार)।

गतिविधि : 1994 में नेशनल फाउण्डेशन फॉर एजुकेशन एण्ड रिसर्च (नेफर) स्वैच्छिक संस्था की स्थापना। मेरठ कार्यस्थल बनाया। पुस्तकें लिखी। भारत सरकार द्वारा संविधान समीक्षा आयोग का गठन होने पर लेखक ने आयोग की रपट के समानांतर अपनी रपट तैयार कर राष्ट्रपति को प्रस्तुत की। 2001 में कताई मिल मजदूरों की बस्ती उजाडे जाने पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अंतर्गत जेल गये। अपनी वकालत स्वयं की बिना किसी व्यय के 83 दिनों बाद जेल से मुक्त हुए।

सम्प्रति: आर्थिक आजादी परिसंघ (जन संगठन) का नेतृत्व, (परिसंघ के) संसदीय प्रकोष्ठ के प्रभारी, याचिका में प्रकाशित विचारों के कार्यांवयन हेतु प्रयासरत।

(नोट : प्रमुख याचिकाकर्ता भरत गांधी की विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित पुस्तक – 'जनोपनिषद' में लेखक परिचय के रूप में प्रकाशित।

भरत गांधी को शैक्षिक जीवन के अंतिम चरण में अमीरी व गरीबी के कानूनी आरक्षण की वंशानुगत व्यवस्था खलने लगी थी। अमीर के बेटे को बिना योग्यता की जांच किये उत्तराधिकार कानून से अमीर बनाने न गरीब के बेटे की योग्यता की बिना जांच किये इसी कानून से गरीब बनाने की अर्थव्यवस्था व राजव्यवस्था की मौज़ूदगी देखकर श्री गांधी को व्यवस्था में विरोधाभास दिखा। वह विरोधाभास व विडम्बना यह थी कि डी0 एम0, सी0 एम0, पी0 एम0 के पदों को वंशानुगत नहीं बनाया गया है, जबकि इन तीनों की मूल प्रेरणा धन संग्रह ही होती है। साध्य यानी धन की सत्ता वंशानुगत है, प्रशासन व राजसत्ता पर लोकतंत्र का प्रयोग चल रहा है। श्री गांधी को यही दुर्व्यवस्था समाज में बढ रहे भ्रष्टाचार, धन लिप्सा, अपराध, उपभोक्तावाद, नशाखोरी, कुण्ठा ग्रस्तता आदि समस्याओं की जननी लगी। श्री गांधी ने निष्कर्ष निकाला कि जब धन सत्ता वंशानुगत है, उसे बेटे को ही दिया जा सकता है तो पद की सत्ता के लिय कोई आदमी इमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा से काम क्यों करेगा? अगर यह मान्यता सही है, व समाज में स्वीकार्य है कि- "हर व्यक्ति अपने बच्चों के लिए काम करता है, तो निश्चित रूप से राजनीति व प्रशासन के क्षेत्र में काम करने वाले लोग भी अपने बच्चों के लिए काम कर रहे है। पद वंशानुगत नहीं है, इसलिए वे वास्तव में काम करते है धन के लिए, बताते हैं कि पद की जिम्मेदारी निभा रहा हूँ। कथनी-करनी का यह अंतर, मिथ्यावाद के बोलबाले का सीधा संबन्ध उत्तराधिकार के कानून से है। यह बात श्री गांधी को इलाहबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की डीग्री लेते ही समझ में आ चुकी थी किंतु तब सिविल सेवा के क्षेत्र में अधिकारी बनने के कैरियर से उसका मोहभंग नहीं हुआ था।

श्री गांधी प्रशासनिक अधिकारी बनकर जीवन यापन करना चाहता था। स्नातक के तुरंत बाद दिये गये उ0 प्र0 सिविल सेवा की प्राथमिक परीक्षा में आयोग द्वारा सफल घोषित भी किया जा चुका था, किंतु दो घटनाओं ने श्री गांधी प्रशासन में जाने से मोहभंग कर दिया। पहली घटना आरक्षण के आन्दोलन से जुड़ी।

सन 1991-92 में जब प्रशासनिक सेवाओं में आरक्षण की खिलाफत में व समर्थन में छात्र आन्दोलन चल रहे थे तो श्री गांधी दोनों में भाग नहीं ले सका। परीक्षा में 50 नम्बर पाने वाला पुरस्कार पाये, और 80 नम्बर पाने वाला दण्ड पाये; आरक्षण की यह व्यवस्था श्री गांधी के गले नहीं उतर रही थी इसलिए पिछडे वर्ग के परिवार में जन्म लेने के बावज़ूद आरक्षण समर्थक आन्दोलनों से श्री गांधी दूर रहा और इसीलिये आरक्षण समर्थक दोस्तों से दोस्ती खोनी पडी़। श्री गांधी इलाहबाद सिविल लाइंस में हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश के मकान के जिस कमरे में किराये पर रहता था, उसी कमरे में सवर्ण समुदाय के दो अन्य विद्यार्थी भी पार्टनर के रूप में रहते थे। एक दिन श्री गांधी तीन दिन के लिए अपने गृह जनपद जौनपुर चला गया। जब तीन दिन बाद लौट कर देखा, तो सवर्ण पार्टनर कमरा छोड़कर जा चुके थे, श्री गांधी का सामान कमरे में तितर-बितर पड़ा था। बाद में पता चला कि उसके सवर्ण साथी श्री गांधी जैसे पिछडे आदमी के साथ नहीं रहना चाहते थे। श्री गांधी की न्याय की मान्यताओं ने पिछडे वर्ग के दोस्तों को पहले ही छीन लिया था, अब सवर्ण दोस्तों ने भी श्री गांधी से किनारा कर लिया।

उक्त घटना ने शैक्षिक दुर्व्यवस्था के प्रति श्री गांधी के मन में आक्रोश भर दिया। श्री गांधी के उक्त दोनों सवर्ण समुदाय के मित्रों पर जरा सा भी क्रोध पैदा नहीं हुआ, अपितु उन पर दया आई। दया इस बात पर आई कि किस तरह एक आन्दोलन ने दो मित्रों को जुदा-जुदा कर दिया। इस घटना ने श्री गांधी के हृदय की घायल जरूर किया, शैक्षिक व्यवस्था के प्रति मोहभंग भी किया किंतु फिर भी कैरियर के प्रति लगाम खत्म नहीं हुआ था। इस दिशा में दूसरी घटना तब घटी जब श्री गांधी अपने जान-पहचान के उन मित्रों के निवास पर गया जो संघ लोक सेवा आयोग का जीवन का अंतिम परीक्षाफल अखबार में देखकर थे और असफल हो गये थे। उनके परिवार में ऐसा लगता था, जैसे घर में कोई मौत हो गई हो। अपने मित्रों के परिवारों में यह मातम देखकर श्री गांधी को लगा, कि मौत जीवन में एक बार नहीं आती, जीते जी कई बार आती है। मौत के बाद परिवारजन की आँखों से निकलने वाले आँसू और नौकरी पाने की अंतिम आशा को तोड़ देने वाला अखबार देखने पर आँख से निकलने वाले आँसू में गज़ब का साम्य था। श्री गांधी पहली बार मौत की घटना पर चिंतन करने के लिए बाध्य हुआ था। उसने नतीजा निकाला कि वाकई एक व्यक्ति जब आई0 ए0 एस0 नहीं बन पाता, या डाक्टर, इंजीनियर नहीं बन पाता, और जीवन का अंतिम परीक्षाफल सामने आता है तो उसकी मौत हो जाती है। यह मौत एक आई0 ए0 एस0 की आत्मा की मौत है। शरीर जीवित रह गई, आत्मा भर गई। श्री गांधी ने इसी तरह की मौत का मातम देखा- अपने कुछ मित्रों, उनके माँ-बाप, भाइयों व बहनों की आँखों में। यह दृश्य देखकर श्री गांधी स्तब्ध रह गये। उसे लगा कि यह मौत है, या हत्या? श्री गांधी ने महसूस किया कि इस हत्यारे की जगह उस समय वह अपने आपको खडा़ पाया, जब उसे स्वयं आई0 ए0 एस0, की मेरिट लिस्ट में जगह मिलेगी। उसे लगा कि जब यह आई0 ए0 एस0 बनेगा तो उसका परिवार खुशियां मनायेगा, लेकिन उसी की वजह से एक आदमी मेरिट लिस्ट से बाहर हो जायेगा और उसके घर में मातम घटेगा। अपने मित्रों व परिचितों के साथ घटने वाली इन एक दुर्घटनाओं ने श्री गांधी के और आई0 ए0 एस0 की नौकरी के बीच लगातार पतले होते जा रहे धागे जो एक झटके में तोड़ दिया। अब श्री गांधी ने तय किया कि वह जीने के लिये कोई ऐसा काम करेगा, जिससे उसके कारण किसी की नौकरी न जाये, किसी की रोज़ी-रोटी न छिने। किसी के जीवन की कीमत पर न जीने का सत्याग्रह श्री गांधी की सन 1993 से लेकर 2005 तक के तेरह वर्षों में अनेक अनुभवों से गुज़ारते हुए संसद की याचिका समिति के दरवाजे तक ले आया।

अपना शैक्षिक जीवन सन 1992 में समाप्त करके शिक्षा व्यवस्था में सुधार करने के लिए श्री गांधी ने नेशनल फाउण्डेशन आफ एजुकेशन एण्ड रिसर्च, संक्षेप में 'नेफर' नाम का संगठन इलाहाबाद के अकादमिक लोगों के सहयोग से कायम किया, जिसके बारे में ज्यादा जानकारी के लिए क्लिक करें.....

श्री भरत गांधी आरक्षण के समर्थन में हुए आन्दोलन में तो इसलिए भाग नहीं ले सके क्योंकि परीक्षा में ज्यादा अंक

पाने वाले विद्यार्थी को असफल घोषित करना व कम अंक पाने वाले सफल घोषित करना, उन्हें गलत लगा। किंतु आरक्षण के विरोध में चल रहे आन्दोलनों में हिस्सा इसलिए नहीं लिया कि यह आन्दोलन वंशानुगत अधिकारों की वकालत भी साथ-साथ कर रहा था। ऊंची जाति में पैदा हुए आदमी को ऊंचा मानने व नीची जाति में पैदा हुए आदमी को नीचा मानने को उनका मन तैयार नहीं था। चूंकि आरक्षण के समर्थन व विरोध दोनों ओर से चल रहे आन्दोलन कर्म की बजाय जन्म को सम्मान देने के लिए चल रहे थे, इसलिए वे किसी की तरफदारी न कर सके। सामाजिक ऊंच-नीच से जुडे आरक्षण आन्दोलन ने और आर्थिक ऊंच-नीच से जुडे उत्तराधिकार के कानूनों ने श्री गांधी को आत्मचिंतन व आत्म पहचान के लिए विवश किया। उन्हें लगा कि वे भले ही पिछडे वर्ग यादव परिवार में पैदा हुए, किंतु चेतना से वह इस वर्ग का पक्षपाती नहीं हैं। इसलिए वे आरक्षण समर्थक आन्दोलनों में शामिल नहीं हो सके। वे सामाजिक न्याय का समर्थक हैं, इसलिये यह आरक्षण विरोधियों का साथ भी नहीं दे सके; क्योंकि वे उत्तराधिकार के खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं चला रहे थे। यह दृश्य देखकर उन्हें लगा कि मन से वह न तो पिछडे वर्ग के सदस्य हैं न अगडे वर्ग के। कार्य और जन्म लेने पर उनका कोई वश नहीं था। जब वह अपने को जातिपुत्र के रूप में परिचय कराकर स्वयं को पिछड़ा वर्ग का बताते, तो उनको लगता था जैसे वह किसी मिथ्याचाय का साथ दे रहे हों। चूंकि सवर्ण समुदाय के परिवार में उसका जन्म नहीं हुआ था, इसलिए सवर्ण समाज का सदस्य बताना सीधे झूठ होता। ऐसे धर्म संकट में उनकी यह विचार सूझा कि वे वास्तव में कर्म से जातिपुत्र की बजाय राष्ट्रपुत्र है। इसलिए उसे अपने नाम के साथ जातिपुत्र सूचक शब्द जोड़ना चाहिए। बाद में उनको इससे एक लाभ और दिखाई दिया, कि जन्म के आधार पर ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की कुरीति व इस कुरीति को ताकत देने वाले अत्याचारी कानूनों को खत्म करने से वह केवल गरीब बाप का बेटा ही नहीं रह जायेगा, राष्ट्रपिता का बेटा भी हो जायेगा। ऐसा होने से राष्ट्रपुत्र की हैसियत से उसे राष्ट्र की आर्थिक विरासत में अपना हिस्सा मिल सकता है, जो उसकी जीविका उपार्जन का साधन बन सकता है। इस साधन से यह बिना किसी की रोज़ी-रोटी छीने अपना जीवन जीने की मंशा भी पूरी कर सकता है। किंतु इतना समाधान होने पर भी एक समस्या एक समस्या तब पैदा हो गई, जब यह पता कि अगर वे अपने नाम के साथ राष्ट्रपुत्र सूचक शब्द 'गांधी' जोड़ता है, तो खतरा यह है कि शायद फिर भी वह जाति के दलदल से ऊपर न उठ पाये, क्योंकि लोग उसे गुजरात का तेली जाति का आदमी समझ सकते हैं। उन्होंने इसका हल यह निकाला कि वह इन दोनों अर्थों के लिए दो वर्तनी (स्पेलिंग) के शब्दों का प्रयोग करेगा। राष्ट्रपुत्र सूचक अर्थ के लिए- **'गांधी'** शब्द को अपने नाम के साथ जोड़ा। अपनी निजी सुविधा व इमानदारी को ध्यान में रखते हुए चन्द्रबिन्दी वाला **'गाँधी'** तेलियों के लिए सुरक्षित कर दिया, व सूर्यबिन्दी वाला **'गांधी'** स्वयं अपने प्रयोग में लिया। इस आशय की सार्वजनिक घोषणा पहली बार सन 1994 की जनवरी में उस दिन किया। जिस दिन श्री गांधी पूरे 25 वर्ष की उम्र के हुए। टाइम्स आफ इण्डिया जैसे तमाम राष्ट्रीय अखबारों में उनके इस संशोधित नाम से खबरें प्रकाशित हुई। इसके पहले सभी अखबार उनके वक्तव्य उनके पुराने नाम से छापते थे। उन्होंने समाजोपयोगी परम्परा शुरू करने के लिये 20 जनवरी सन 2001 को उस समय भी जेल में अपने पिता की जगह राष्ट्रपिता का नाम लिखवाया, जब उसे राष्ट्र की सुरक्षा के लिये खतरनाक बताकर मेरठ के जिलाधिकारी ने गिरफ्तार करके लम्बे समय के लिए जेल में डाल दिया था। मामले का विस्तृत विवरण जानने के लिये क्लिक करें.....

श्री गांधी ने शैक्षिक व्यवस्था में सुधार के लिये 'नेफर' नामक संगठन के मध्यम से लगातार 1992 से लेकर 1995 तक अथक परिश्रम करके शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए कुछ नतीजे निकाले, किंतु इन नतीजों का कार्यांवयन संसद की मंजूरी के बिना संभव नहीं था। जब राजनैतिक दलों के कुछ कार्यकर्ताओं से बातचीत किया गया तो शैक्षिक सुधार के 'नेफर' प्रस्ताव में उन्होंने अपने व अपनी पार्टी के लिये नोट या वोट की संभावनाएं तलाशना चाहा। श्री गांधी को स्पष्ट समझ में आ गया, कि जब तक संसद में इस व्यवस्था के समर्थक लोग नहीं जाते, तब तक शिक्षा की व्यवस्था में सुधार

करना संभव नहीं है। इस निष्कर्ष के बाद उन्हें शिक्षा सुधार का कार्य स्थगित करके राजव्यवस्था व अर्थव्यवस्था पर सोचने के लिए मज़बूर होना पड़ा।

श्री गांधी को उक्त अनुभवों से लगा कि उसे कुछ समय तक एकांतवास करके लेखन कार्य करना चाहिए, और जिस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में सुधार का एक प्रारूप तैयार किया, उसी प्रकार अर्थव्यवस्था व राजव्यवस्था में भी सुधार का प्रारूप तैयार करना चाहिए। शिक्षा पर कार्य करते-करते उन्हें यह समझ में आया कि सरकार की शिक्षा व्यवस्था एक साधन के रूप में काम करती है, साध्य तो अर्थव्यवस्था व राजव्यवस्था ही होती है। इस निष्कर्ष के बाद वे इलाहाबाद शहर छोड़कर मेरठ प्रस्थान करने का फैसला किये। मेरठ में लगातार 1995 से 1998 तक वे एकांतवास करके वैकल्पिक अर्थव्यवस्था व राजव्यवस्था पर कई पुस्तके लिखे। इसमें से कुछ पुस्तकों का प्रकाशन हो जाने के बाद 'आर्थिक आजादी आन्दोलन परिसंघ' नामक एक जनसंगठन स्वत: ढ़ंग से बना, जो अपने जन्म के 5 वर्षों बाद इस एक याचिका को लोकसभा में प्रस्तुत करने की कार्यवाही करी। बाद में राज्यसभा में भी याचिका इस जनसंगठन द्वारा की गई।

यद्यपि श्री गांधी का पैत्रिक संबन्ध ग्राम-आनापुर, पो0 मछली शहर, थाना-सिकरारा, जनपद-जौनपुर, उ0 प्र0 से है; किंतु इस पते पर वे निवास नहीं करते हैं। 1995 से 2003 तक वे मेरठ में किराये के मकान मे रहे, जिसका किराया उनके बडे ब छोटे भाई उठाते थे। वे खाली समय में लेखन का काम करते, मार्ग व्यय का आश्वासन मिलने पर देश भर में घूम-घूम कर जनसभायें करके आर्थिक लोकतंत्र व्यवस्था को लोकप्रिय बनाने का काम करते रहे। उनका निजी खर्च 1000 रुपये प्रतिमाह उनके रक्त परिवारजन उठाते रहे, 500 रुपये प्रतिमाह मेरठ में कई शिक्षण संस्थानों के संचालक डा0 अतुल कृष्ण ने उठाया। कुल 1500 रुपये महीने में वे अपने निजी खर्च सीमित रखते थे, और इस रकम का एक हिस्सा सामाजिक कार्यों पर ही नियमित खर्च कर देते थे। उनका किसी बैंक में कोई खाता नहीं है

शैक्षिक व्यवस्था में सुधार के लिये 'नेफर'

सन 1992 में जब श्री गांधी विधि स्नातक कोर्स का पहला वर्ष उत्तीर्ण करके दूसरे वर्ष में था, तो उक्त घटी घटनाओं ने आगामी विद्यालयी शिक्षा के औचित्य पर ही प्रश्न लगा दिया। क्योंकि अब श्री गांधी के जीवन के लक्ष्य व प्राथमिकताएं बदल गई थीं। नई प्राथमिकताओं की दिशा में बढ़ने में विद्यालयी शिक्षा उपयोगी साबित होने की बजाय समय की बर्बादी के रूप में दिखाई दे रही थी। इसलिए शी गांधी ने सबसे पहले शिक्षा में सुधार के उद्देश्य से 'नेशनल फाउण्डेशन आफ एजुकेशन एण्ड रिसर्च' सन्क्षेप में 'नेफर' के नाम से एक संगठन बनाया, व उसे पंजीकृत करवाया। इलाहाबाद शहर के शिक्षा, विधि व राजनीती से जुड़े शीर्षस्थ लोग संगठन मे शामिल हुए।

नेफर ने शिक्षा के निजीकरण या राष्ट्रीयकरण की बजाय 'जनापेक्षीकरण' के नाम से शिक्षा के निजीकरण व शासकीकरण के बीच का नया मार्ग निकाला। 'शैक्षिक व्यवस्था का नेफर मॉडल' के नाम से इलाहाबाद की मीडिया में लोकप्रिय इस व्यवस्था के प्रस्ताव ने शिक्षा व्यवस्था में अकादमिस संरचना के साथ-साथ व शैक्षिक मूल्यों वित्त सन्चार प्रणाली का विकल्प भी पेश किया। शैक्षिक सुधार के इस प्रस्ताव में अकादमिक डिग्री व प्रतियोगित परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों के बीच अंतर को पाटना इसलिए आवश्यक बताया गया, क्योंकि इन दोनों चक्कों के बीच पिस कर विद्यार्थी का कई वर्षों का बहुमूल्य समय नष्ट होता है। विश्व विद्यालय स्तर की शिक्षा में राजनीतिशास्त्र विभाग की बजाय स्थानीय राजनीति विभाग, प्रादेशिक राजनीति विभाग, देशीय राजनीति विभाग, वैश्विक राजनीति विभाग जैसे विभागों की जरूरत बताई गई। इसके पीछे मूल मान्यता यह है कि काम करते-करते सिद्धांतों को समझने की भूख जगनी चाहिए; न कि पहले विद्यार्थी को उबाऊ सिद्धांत ही ज़बरदस्ती उसके दिमाग मे धकेला जाये। शिक्षा के जनापेक्षीकरण के नाम से प्रतिपादित शिक्षा के नेफर मॉडल में स्थानीय मूल्यों में समंवय करते हुए नये सामाजिक व वैश्विक मूल्यों के प्रचार-प्रसार को आवश्यक बताया गया। इसका मूल कारण यह है कि बाज़ार के वैश्विकरण के बाद व्यक्ति की रोटी का दायरा विश्वव्यापी हो गया है, लेकिन अगर वह विश्व से प्रेम करने के मूल्यों को अपनाता है तो स्थानीय संस्कृति की जडे उखड़ने का खतरा

पैदा होता है। और राष्ट्रवाद की पुरानी परिभाषा को अपनाकर जीना चाहे तो यह परिभाषा इस तरह के वैश्विक प्रेम के सामने बाधक बनकर खड़ी हो जाती है। नेफर मॉडल ने इसका समाधान यह बताया कि नई परिस्थितियों में राज्य की सत्ता संरचना भी बदलना चाहिए; जिससे विश्व स्तरीय राज्य वैश्विक मूल्यों के पोषणकर्ता के रूप में काम करें और स्थानीय राज्य स्थानीय मूल्यों का पोषण करे। नेफर ने राज्य के इन दोनों ध्रुवों के बीच राज्य के मध्यवर्ती सोपानों की उपस्थिति भी आवश्यक बताया। नेफर मॉडल ने यह भी बताया कि आर्थिक विषमता के मूल्य साथ-साथ एक अन्धविश्वास व एक तरह की जैविक नशाखोरी साबित हो रहे हैं; क्योंकी अब लगभग मानव रहित उत्पादन प्रणाली अस्तित्व में आ चुकी है। अब आर्थिक विषमता के मूल्यों का पठन-पाठन एक ऐसा अन्धविश्वास बन गये हैं. जिससे गरीबी की रक्षा हो रही है, जबकि यह विषमता अब विकास में सहयोग नहीं कर पा रही है। नेफर मॉडल ने समता के मूल्यों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना अब आवश्यक बताया, क्योंकि मशीनों द्वारा प्रचूर उत्पादन के आज के युग में, जब से आदमी को पारम्परिक काम करने के अवसर ही समाप्त हो गये हैं, तो नेफय ने निष्कर्ष निकाला कि मशीनी उत्पादन के वर्तमान युग में आब लोगों को आर्थिक विषमता के मूल्य पढ़ाकर और भूखा रखकर उन्हें काम करने वाले दासों की रिज़र्व फोर्स बनाकर रखने का औचित्य ही खत्म हो गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में नेफर के इस आविष्कार को टाइम्स आफ इण्डिया, पॉयोनियर, लीडर, अमृत प्रभात, न्यूजलीड, दैनिक जागरण, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा, आज, स्वतंत्र भारत जैसे बडे अखबारों ने सन 1994, 95, 96 के लगभग ढाई वर्षों की अवधि में कम से कम अपने 35 अंकों में चार-चार, पाँच-पाँच कालम में प्रमुख समाचार के रूप में प्रकाशित किया। आकाशवाणी इलाहाबाद ने अपने 'परिक्रमा' नामक साप्ताहिक कार्यक्रम के कई अंकों में नेफर की गतिविधियों को प्रमुखता के साथ प्रसारित किया। यदि शासन के शिक्षा विभाग व संसद का सहयोग उन दिनों मिला रहता, तो आज 10 वर्षों बाद के विश्व पटल पर देश की तस्वीय ही दूसरी हो सकती थी। इस अनुभव से श्री गांधी ने महसूस किया कि मीडिया का अब कोई परिणामोत्पादक प्रभाव न तो शासन पर पड़ता है, न तो समाज पर। यह भी महसूस किया कि शासन के विभाग अपना कर्त्तव्य समझ कर कुछ नहीं करते; वे शासन से मिलने वाले वेतन के अलावा पैसे का अतिरिक्त लाभ देखकर ही कुछ करने को प्रवृत होते हैं। इसी अनुभव के नाते श्री गांधी 1995 के बाद अपनी गतिविधियों की सूचना मीडिया को देने के प्रति उदासीन हो गया।

शैक्षिक प्रबन्धन के विषय पर नेफर ने अपना फैसला यह सुनाया कि अध्यापन के कार्य में सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों में स्कूलों की मौजूदगी आवश्यक है, जो है भी। लेकिन शिक्षा परिषदें भी निजी क्षेत्र में होना चाहिए। क्योंकि अध्यापन कार्य में तो दोनों क्षेत्रों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा हो पाती है, पाठ्यक्रम व परीक्षा प्रणाली के क्षेत्र में नहीं हो पाती। स्कूलों को यह छूट मिलनी ही चाहिए कि वे शासकीय बोर्ड से एफिलिएशन लें, या निजी बोर्ड से? जो बोर्ड अच्छी गुणवत्ता देगा, उसे अपनाने की आजादी स्कूलों को नहीं है। इससे तमाम समस्याएं पैदा होती हैं। देश भर में शिक्षा की एक समान व्यवस्था कायम करना संभव नहीं हो सकता, क्योंकि देश में आर्थिक विषमता के मूल्य अपनाये गये हैं। नेफय का इस विषय में निष्कर्ष यह था कि जब तक आर्थिक विषमता रहेगी, तब तक एक समान शिक्षा व्यवस्था काय्म नहीं की जा सकती, यदि ऐसा करने का प्रयास किया जायेगा तो परिणाम तो आ नहीं सकता, इसके विपरीत भ्रष्टाचाय का एक शासकीय अड्डा और खुल जायेगा।

नेफर के माध्यम से शैक्षिक सुधार के लिय काम करते-करते शिक्षा के गुणात्मक उत्थान व परिमाणात्मक विस्तार का मामला श्री गांधी के सामने आया। कार्य के एक चरण में पहुंच्कर यह प्राथमिकता तय करना आवश्यक हो गया, कि वह शिक्षा के गुणात्मक उत्थान के लिए काम करें या अधिक से अधिक लोगों को शिक्षित बनाने के लिए यानी परिमाणात्मक विस्तार के लिए काम करें? श्री गांधी जब शिक्षा के क्षेत्र में ऊंचे से ऊंचे प्रयोग चल रहे हैं व अनेक विद्यालयों में अपने-अपने तरीके से ये प्रयोग प्रदर्शित भी किये जा रहे हैं। श्री गांधी ने यह भी देखा कि शिक्षा के ये संस्थान केवल अल्पसंख्यक अमीर परिवारों की सेवा में लगे हैं। समाज का बहुसंख्यक हिस्सा यहाँ तक पहुँच ही नहीं सकता। इस अनुभव के बाद श्री गांधी ने तय किया कि वह समाज के लगभग बचे हुए पूरे हिस्से को शिक्षित बनाने का काम करेंगे।

जब शिक्षा के परिमाणत्मक विस्तार का रास्ता उन्होंने अख्तियार कर लिया तब देखा कि अधिकांश गरीब परिवार पैसे की तंगी के कारण बच्चों को पढ़ने का अवसर नहीं दे पाते। परिवारों की नियमित आमदनी का ज़रिया सुनिश्चित किये बगैर सबको स्कूलों से गुज़ार पाना असंभव दिखा। इस परिस्थिति ने उनको बाध्य किया कि वह परिवारों की आमदनी के नियमित स्रोत खोजने का काम

करे। यहाँ से श्री गा़धी शिक्षा व्यवस्था की बजाय अर्थव्यवस्था व उसे संचालित करने वाली राजव्यवस्था की और नज़र डालने के लिए उन्मुख हुआ। यह कशमकश भी वोटरशिप की खोज का कारण बना। वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि जनता को शिक्षा के प्रति जागरुक करने से शिक्षा का प्रवेश परिवारों में नहीं होगा। अधिकांश लोगों में लोकप्रिय यह मान्यता वास्तव में एक मिथक है। वास्तविकता यह है कि वोटरशिप के माध्यम से हर एक परिवार की नियमित आमदनी का ज़रिया सुनिश्चित करने व सकल घरेलू फुरसत के क्षणों में से हर परिवार को उसका हिस्सा वापस कर देने से सर्व शिक्षा का परिणाम स्वत: दिखाई पड़ने लग जायेगा। श्री गांधी इस नतीजे पर पहुँच है कि परिवार में शिक्षा पहले नहीं आती, पहले नहीं आती, पहले पैसा आता है। जिस परिवार में पैसा आ जाता है, उसके बच्चों में शिक्षा स्वत: प्रवेश कर जाती है। जिन परिवारों में शिक्षा पहुँचानी हो, वहाँ पाठ्यपुस्तक व शिक्षक भेजना निरर्थक है; वहाँ पैसा भेजना श्रेयस्कर है। परिवार में शिक्षा आने से पैसा आयेगा, या पैसा आने से शिक्षा आयेगी। यह बहस उन्हें मुर्गी व अण्डे की बहस जैसी लगी। श्री गांधी ने 'पहले पैसा' के पक्ष में अपना फैसला सुना दिया है, उसी दिशा में काम कर रहा है।

नेफर की गतिविधियों की मीडिया रपटों से परिचित होने के लिए क्लिक करें....

'वोटरशिप' जीवन के अनुभवों का निष्कर्ष

श्री गांधी इस इच्छा से संचालित हैं कि किसी अन्य के अधिकारों का अतिक्रमण किये बिना अपने अधिकारों का उपयाग करते हुए सम्मानपूर्वक अपना जीवन जी सके, इसलिए उन्हें जीवन में कुछ ऐसे कठिन मार्गों से गुज़रना पडा़, जो प्रसब पीड़ा की तरह कष्टप्रद किंतु परिणामदायक रहे। उसमें से कुछ की झलक इस प्रकार है-

1 श्री गांधी ने 1992 में उ0 प्र0 की प्रादेशिक सिविल सेवा की प्रारंभिक परीक्षा प्रथम प्रयास में उत्तीर्ण किया। इसके बावज़ूद प्रादेशिक या भारतीय सिविल सेवा में जाने का विचार उन्हें छोड़ना पडा़; क्योंकि बेरोज़गारी के वर्तमान युग में किसी एक भाई-बहन के बेरोज़गार रह जाने का उसे खतरा दिखा। कारण यह था कि वे सिविल सेवा को कोई पद स्वीकार कर लेते तो लगभग उतना ही योग्य एक अन्य भाई या बहन उस पद को प्राप्त करने से वंचित रह जाता/जाती। यह दूसरे के अधिकारों का उनके द्वारा अतिक्रमण होता। ऐसा संभव था कि इस प्रकार पद से वंचित कोई व्यक्ति जीवन भर बेरोज़गार रह जाता। ऐसा भी संभव था कि अपनी वृत्ति के अनुसार या तो वह किसी आपराधिक कृत्य में संलग्न होकर अपनी रोटी का प्रबन्ध करता; या फिर भविष्य के असम्मानजनक जीवन का भय देखकर आत्महत्या कर लेता।

2 श्री गांधी ने सोचा कि शायद बडे पदों के लिए ही समाज में ज्यादा होड़ होगी, इसलिए छोटे पदों पर काम करके जीवन निर्वाह करना चाहिए। इस विचार से उन्होंने स्कूल के चपरासी, फैक्ट्रियों के वर्कर तथा अखबारों के दफ्तरों में कोई काम तलाशने का अभियान चलाया; तमाम जगहों पर जाकर देखा तो इन कम वेतन वाली जगहों पर भी तमाम लोग इन पदों के काम ऐसे मांगते दिखे जैसे काम नहीं, सड़क पर भीख मांग रहे हो, उनके होठों पर सूखती हुई पपडी़ की पर्तें जब श्री गांधी ने देखा तो उसे कम वेतन के सरकारी या गैर सरकारी पदों पर काम करने का विचार भी त्यागना पडा़। उनको साफ दिखाई दिया कि अगर वह कम वेतन के किसी पद को स्वीकार करते हैं तो वे अपने जीवन निर्वाह के प्रयास में किसी एक न एक अन्य नागरिक को जीवन जीने से वंचित अवश्य कर देगा।

3 इस बीच कुछ लोगों से वार्तालापों एवं अखबारों के कुछ विश्लेषणों से श्री गांधी इस मान्यता से परिचित हुआ कि – लोग 'व्हाइट कॉलर जॉब' चाहते हैं, इसलिए काम नहीं मिलता अन्यथा दुनिया में काम की कोई कमी नहीं है। इस अवधारणा ने उनको प्रेरित किया कि उन्हें पदों का लालच छोड़कर असंगठित क्षेत्र की मज़दूर बाज़ारों में जाकर अपना श्रम बेचना चाहिए। शायद सड़क बनाने के काम, ईंट-गारा ढो़ने के काम में काम पाने की होड़ नहीं होगी, वहाँ काम करने वालों की मांग होगी। इसलिए श्री गांधी लगातार सन 1997 के चार महीने अप्रैल-मई-जून-जुलाई तक बारी-बारी से उ0 प्र0 के मेरठ शहर की एल0 बलॉक, शास्त्री नगर मज़दूर बाज़ार, शगाशा मज़दूर बाज़ार, जेल चुंगी मज़दूर बाज़ार, बेगमपुल मज़दूर बाज़ार और बागपथ अड्डा मज़दूर बाज़ारों में रोज़ सुबह मज़दूरों के बीच दिन भर के लिए बिकने के लिए खडा़ होता रहा। उनको इस दौरान भी मज़दूरी नहीं मिली, किंतु मज़दूरों से परिचय बढ़ने लगा। मज़दूरी नहीं मिलने पर उनके सामने सवाल उठ गया। उन्होंने गन्दे कपडे पहने व दाढी़ बढा़ने के प्रयोग भी करके देखे कि सारे मज़दूरों को तो काम मिल जाता है, वे 10-11

बजे सुबह तक कहीं न कहीं चले जाते हैं, फिर उनको मज़दूरी पर कोई क्यों नहीं ले जाता? इस सवाल के जवाब में साथी मज़दूरों ने बताया कि आप यह समझते हैं कि सबको का मिल जाता है इसलिए 11 बजे तक सभी काम पर चले जाते है; जबकि आपको अनुभव की कमी है। उन्होंने बताया कि 11 बजे के बाद काम पर बुलाने वाला कोई आता ही नहीं। इसलिए मज़दूर बाज़ार में आये हुए ज्यादातर मज़दूर 11 बजे अपने-अपने घर चले जाते है, काम पर नहीं जाते। साथी मज़दूरों का यह कथन उस दृश्य से मेल खा गया, जिसमें वे रोज़ देखते थे कि एक आदमी स्कूटर से आकर मज़दूरों के बीच में रुकता था, और स्कूटर की गद्दी पर बैठा ही रहता थाल; तब तक मज़दूय उसे भिखमंगों की शैली में चारों तरफ से घेर लेते थे। वह सौदा करता था- काम ये..... है। कितने रुपये (दिन भर के) लोगे? श्री गांधी अक्सर उस भीड़ को चीरकर अन्दर नहीं जा पाता था, बस भीड़ के पीछे से श्रमिक के खरीदार और दिन भर के लिए खुद को बेचने के लिए खडी़ भीड़ में वार्तालाप सुनता था। जो मज़दूर प्रचलित मज़दूरी से कम में काम करने की हामी भर देता था और अपेक्षाकृत चुस्त दुरुस्त दिखाई देता था, स्कूटर वाले उसे भीड़ के बाहर लाते थे और पता बताकर पते पर पहुंचने का निर्देश दे देते थे। जब 11 बजे भीड़ को छंट जाने का यह कारण मज़दूरों ने बताया तब श्री गांधी का ध्यान इस तरफ गया और फिर देखा कि वास्तन में आमतौर पर जिसे मज़दूर की ज़रूरत होती थी, वे सब सुबफ सात से 10 बजे के बीच ही आते थे। 10 बजे के बाद सौदेबाजे वाली भीड़ भी नहीं दिखती थी। इस अनुभव के बाद उनकी काम पाने की अंतिम आशा भी टूट गई। उन्होंने अनुभव किया कि कलैक्टर बनने के लिए लोगों में होड़ थी, वही होड़ ईंट-गारे की ढुलाई से दिन भर में 60 रुपये पाने के लिए भी थी। इससे वे यह नतीजा निकाल सके कि निजी कम्पनियों में या असंगठित मज़दूर बाज़ारों में उनके शामिल होने के दो अनिवार्य परिणाम होंगे। पहला, यह कि एक श्रमिक दिन भर के काम और उससे मिलने वाले 60 रुपये की मज़दूरी से वंचित हो जाएगा। दूसरा, यह कि मज़दूरी का रेट 60 गिराकर 50 रुपये हो जाएगा। इस नतीजे ने फिर उन्हें बताया कि अगर वे मज़दूरी करता है तो उसे अपने संकल्प के साथ जीने की शर्त को तोड़ना होगा। उल्लेखनीय है कि उन्होंने यह संकल्प लिया था कि वह दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण किये बगैर अपने अधिकारों का उपभोग करेंगे और सम्मानपूर्वक जीयेंगे।

4 सन 1992 से सन 1998 पूरे 6 वर्ष तक तो वे यही तलाशते रहे कि वे अपने संकल्प के साथ कैसे जीवित रह सकें। इस बीच आत्म मंथन करने पर उन्हें लगा कि वे काम तो करने की स्थिति में हैं, और कर भी रहे हैं किंतु काम का आर्थिक मूल्यांकन नहीं हो रहा है। इसलिए जहाँ वे इलाहाबाद में रहते हुए परिवार से लेकर हर महीने 4000 रुपये खर्च करते थे, अब उन्हें 1000 रुपये में महीना काटने को मज़बूर होना पड़ा। परिवार, जिसमें उनका जन्म हुआ, उससे अब पैसा मांगने का अधिकार भी खो दिया, क्योंकि परिवार को पैसा वापस दे पाने की स्थिति में वे स्वयं को नहीं पा रहे थे। ऐसी दुर्दशा देखकर मेरठ के एक उद्योगपति ने अप्रैल 1999 से वे उनको 500 रुपये हर माह सहयोग देना शुरु किया। उन्होंने जून 2004 में आकर वोटरशिप के विरोध स्वरूप यह सशर्त राशि देना बंद कर दिया।

5 1994 के बाद से सन 2000 के मध्य उन्होंने स्वयं कई फर्मों/कम्पनियों को बन्द होते हुए देखा और सुना। यहाँ तक कि ऐसे ही एक प्रकरण में उनको एक मिल में मिलकर्मियों के साथ प्रशासनिक ज्यादती का विरोध करना पड़ा। इस विरोध को प्रशासन ने बुरा माना एवं झूठी धाराएं लगाकर उनको 29 अन्य मज़दूरों के साथ जेल भेज दिया। उनको प्रशासन के अत्याचाय के खिलाफ मज़दूरों की रक्षा हेतु लगभग तीन महीने (83 दिन) मेरठ जेल में रहना पड़ा। जेल से निकलने पर उन्होंने मानहानि एवं क्षतिपूर्ती का मुकदमा हाईकोर्ट इलाहाबाद में दायर किया, जो अभी भी विचाराधीन है।

इन घटनाओं ने श्री गांधी को सिखाया कि छोटे निवेश के उद्योग विश्व व्यापार संगठन की आंधी में टिक नहीं सकते। बड़ा निवेश करके वे कोई व्यवसाय कर नहीं सकते थे, क्योंकि रक्तपिता के पास इतनी संपत्ति नहीं थी, जिसे निवेश के

रूप में उपयोग करता या फिर उस संपत्ति की गारंटी पर बैंक से लोन लेता। इस दशा ने यह सुनिश्चित कर दिया कि छोटे-मझौले दर्जे का उद्योग लगाकर वे अपनी आमदनी का ज़रिया नहीं बना सकते।

6 श्री गांधी 1992 में 23 वर्ष की उम्र के थे। इसी वर्ष उन्होंने दूसरे के अधिकारों के अतिक्रमण के बिना अपने अधिकारों के प्रयोग का संकल्प लिया। इसी वर्ष उन्हें प्रादेशिक सिविल सेवा की प्रारंभिक परीक्षा में सफल घोषित करके आगामी प्रक्रिया के लिए लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद द्वारा बुलावा पत्र भेजा गया। ठीक इसी समय उसे अपने संकल्प की रक्षा में अपने विवाह की प्रक्रिया पर रोक लगानी पडी़। जबकि विवाह की तमाम महत्त्वपूर्ण रस्में पूरी हो चुकी थी। वे जान गये थे कि सिविल सेवा उसकी आमदनी का ज़रिया नहीं बन सकती। आमदनी का नया स्रोत अभी स्पष्ट नहीं हुआ था। रक्त पिता की पैत्रिक संपत्ति इतनी थी नहीं कि एक दम्पत्ति का खर्च उससे उठाया जा सकता। इसलिए उनको आमदनी का नया ज़रिया पैदा होने तक शादी की प्रक्रिया स्थगित करनी पडी़। 1992 से 1997 तक 5 वर्षों में उन्होंने यह अनुभव किया कि अपने संकल्प की रक्षा करते हुए किसी सरकारी या गैरसरकारी संगठन-संस्थान-फैक्ट्री से वह कम वेतन की आमदनी का स्रोत पैदा नहीं कर सकता। इस समय तक उनकी उम्र 28 वर्ष हो गई। इस अवधि में उन्होंने महसूस किया कि शादी-विवाह के अधिकांश मामलों में पात्र की आर्थिक योग्यता उसकी मानसिक-शारीरिक योग्यता पर भारी पड़ती है। भारतीय समाज में कोई भी पिता जब कोई वर तलाशने के लिए निकलता है तो उसके मन में जातीय आरक्षण और आर्थिक आरक्षण का पैमाना होता है। वह अपनी जाति के कम योग्य वर को चुनना पसन्द करता है, दूसरी जाति के ज्यादा योग्य वर को खारिज़ कर देता है। वह अपनी ही जाति के ज्यादा सम्पन्न वर को पसन्द करता है, अपनी ही जाति के ज्यादा समझदार किंतु विपन्न वर जो खारिज़ कर देता है। वर की तलाश में वधू के पिता की नज़र वर की सम्पत्ति और आमदनी पर ललचाती रहती है, इसी लाल्च को देखकर वर पक्ष अपने को लगभग नीलाम करने जैसा बर्ताव वधू पक्ष के साथ करता है। वर पक्ष मी सम्पत्ति व आमदनी वधू को दिलाने के एवज में वधू पक्ष नीलामी जैसी जो रकम देता है, उसे दहेज नाम की बुराई के रूप में प्रचार मिला है। श्री गांधी ने मेरठ में एक ऐसी ही शादी की परिघटना को घटते हुए देखा। जिसमें एक पिता दूसरी जाति के ज्यादा योग्य वर (डाक्टर) को दामाद नहीं बनाया और अपनी जाति के तमाम विपन्न वरों को खारिज करते हुए अपेक्षाकृत एक संपन्न प्राइमरी अध्यापक को दामाद बनाया।

समाज में आर्थिक आरक्षण की यह तस्वीय देखकर श्री गांधी यह नतीजा निकाल सके कि चाहे वह कितने भी विद्वान एवं कितना भी परमार्थी क्यों न हो, जब तक वे आमदनी का जरिया नहीं बनाते, उन्हें विवाह से रहना होगा। उन्होंने यह भी महसूस किया कि अगर कोई बहू स्वयं आमदनी का जरिया रखती है तो भी वह ऐसे वर को पसन्द नहीं करती, जिसके पास आमदनी का जरिया नहीं होता। उन्होंने यह भी देखा कि एक अमीर घर की बहू प्रतिभाशाली वर को इस आधार पर खारिज कर देती है कि वह अमीय बाप का बेटा नहीं है, या वह लाखों रुपया महीने की आमदनी नहीं रखता।

श्री गांधी के सामने असाध्य विरोधाभास लम्बे समय से मौजूद है। अगर वे आमदनी का जरिया पैदा करने के लिए कहीं नौकरी करे तो उसके जीवन का संकल्प टूटता दिखा। अगर वे आमदनी युक्त वधू व सम्पन्न घर की किसी लड़की के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखें तो उन्हें प्रस्ताव खारिज होता हुआ दिखा। उन्होंने देखा कि पैसा को योग्यता नापने का सर्वश्रेष्ठ पैमाना संसद और कमाज दोनों स्वीकार कर रखा है। जबकि न तो संविधान और न ही समाज यह देखता है कि किसी के पास जो पैसा है, वह उनकी प्रतिभा-मेहनत की देन है, या फिर भ्रष्टाचार-विरासत की। वे अब इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि -

पहला – यदि वर-वधू में से किसी एक की ही आमदनी को वैध मानने का कानून नहीं बनता और असीमित उत्तराधिकार की सीलिंग का कानून बनाकर गरीब माँ-बाप के घर में पैदा हुए बच्चों को कुछ न कुछ उत्तराधिकार की आमदनी का

मालिक नहीं बनाया जाता तो रोजगार के सिमटते अबसरों तथा बढ़ती (या स्थिर) जनसंख्या को देखते हुए उनको ही नहीं, ऐसे तमाम लोगों को मज़बूरन अविवाहित रहना पडेगा।

दूसरा – यदि श्री गांधी को राष्ट्रीय आर्थिक उत्तराधिकार की सम्पत्ति में अपने हिस्से का किराया (यानी वोटरशिप) मिल जाता है तो वे इस सम्पत्ति या सम्पत्ति के किराये को संकल्प तोडे बगैर अपनी आमदनी का जरिया बना सकते हैं, और इस आमदनी को आधार बनाकर अपने विवाह का विज्ञापन भी दे सकते हैं।

श्री भरत गांधी की इच्छा है कि वे जिसके लिए काम करें, उससे प्रत्यक्ष भुगतान न लें, क्योंकि ऐसा करके ही वे अपने संकल्प की रक्षा कर सकते हैं। कार्य के बदले जो आनन्द की प्राप्ति होती है, वे उसी आनन्द को अपना प्रत्यक्ष भुगतान मानना चाहता है। आजीविका का खर्च वे राष्ट्रीय विरासत की सम्पत्ति में अपने हिस्से के किराये पर डालने के इच्छुक हैं। वे पिछली पीढ़ियों के कार्यों से पैदा हुए वित्तीय स्रोत को अपने आजीविका का आधार बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनके कार्यों से पैदा हुआ वित्त आने वाली पीढ़ियों की अजीविका के लिए वित्तीय स्रोत बने। किसी भी संस्थान में, या स्वतंत्र रूप से बिना प्रत्यक्ष वेतन लिए यदि वे काम करते हैं तो नियोक्ता पर उनकी वजह से कोई आर्थिक दबाव नहीं पडेगा। इसलिए न तो वह उनके कारण अपने संस्थान से किसी को बाहर निकालेगा और न ही पैसे के लिए काम करने वालों के लिए रिक्तियों का विज्ञापन देने से अपने कदम वापस ही खीचेगा। ऐसा हुआ तो उनको काम करने के लिए जरूरी पैसा भी मिल जाएगा एवं किसी दूसरे भाई-बहन को उसकी आजीविका से बंचित भी नहीं करेगा। इस प्रकार उसे आय का एक अहिंसक जरिया और काम – दोनों मिल जाएगा।

श्री गांधी के सम्पर्क में 1994 में कुछ ऐसे लोग आये, जिन्होंने विश्व ब्यापार संगठन के दुष्प्रभावों से परिचित कराते हुए कहा कि भारत सरकार यदि इस (डंकल प्रस्ताव) द्स्तावेज़ पर हस्ताक्षर कर देती है तो भारत के उद्योगों की प्रतिस्पर्धा विश्व के अन्य देशों के साथ हो जाएगी। भारत के उद्योग इस प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए अन्धाधुन्ध मशीनीकरण का सहारा लेंगे। इसका परिणाम होगा छोटे एवं मझोले उद्योगों का निवेश की कमज़ोरी के कारण ठप्प होना और रोज़गार प्राप्त लोगों की अन्धाधुन्ध छटनी।

अपनी शैक्षिक (अकादमिक) जीवन का दरवाज़ा बन्द करके उन्होंने शिक्षा व्यवस्था की समस्याओं एवं उनके समाधानों के अभियान पर काम किया था। इसलिए विश्व व्यापार संगठन के खिलाफ किसी अभियान में लग पाने की परिस्थिति में नहीं था। इसी कारण उन्होंने असमर्थता उन लोगों से जाहिर किया जो स्वदेशी साधनों के सहारे आन्दोलन में सहयोग मांग रहे थे।

श्री गांधी उक्त अनुभवों से गुजरने के बाद अपने संकल्प के साथ जीने का कोई उपाय नहीं पाने लगा तो अवसाद ग्रस्त हो गया। इस मानसिक अवस्था में उन्होंने सोचा कि अगर किसी दूसरे के जीवन की कीमत पर ही जीना सम्भव है तो अपने जीवन की इहलीला समाप्त क्यों नहीं कर लेना चाहिए? इस मानसिक अवस्था में उन्होंने लगातार सन 1996 व 1997 के पूरे दो वर्ष और 1998 का कुछ हिस्सा गुजारे।

इस मानसिक अवस्था में उनका ध्यान आत्महत्या की घटनाओं पर गया। उन्हें जानकारी हुई कि अगर कोई व्यक्ति आत्महत्या में सफल नहीं होता हो उसे जेल की सज़ा काटनी पड़ती है। उन्होंने प्रत्यक्ष महसूस किया कि देश की राजव्यवस्था व अर्थव्यवस्था आदमी को जीने नहीं दे रही है और अगर मरने का प्रयास करिए तो सामने कानून आकर रोक रहा है।

14 दिनों का प्राणघातक अनशन

उक्त मानसिक अवस्था में उ0 प्र0 में मेरठ जिले के मवाना तहसील के अंतर्गत खेड़ी मनिहार गाँव में एक दुर्घटना घटी, जिसमें आर्थिक तंगी से तंग आकर एक ही परिवार के 5 लोगों ने ज़हर खाकर आत्महत्या का प्रयास किया, जिसमें 4 की मौत हो गई, 8 वर्ष की एक छोटी शिशु को चिकित्सकों ने अस्पताल में बचा लिया। यह घटना अखबारों में मुख्य पृष्ठ पर छपी और श्री गांधी को उद्वेलित कर हई। उन्होंने पहली जुलाई 1998 को जब यह घटना अखबार में पढ़ा तो सुबह नाश्ता करने की उसकी इच्छा मर गई। दोपहर भोजन भी नहीं किया। शाम का भोजन भी मना कर दिया। अगले दिन पूरे दिन भर नहीं खाया। तीसया दिन भी बिना खाये निकल गया। चौथे दिन भूख की पीड़ा काफी बढ़ गई थी, किंतु उनको ऐसी घटनाएं रोकने का कोई उपाय सूझ नहीं रहा था, जबकि विश्व की राजव्यवस्था व अर्थव्यवस्था की दिशा को देखते हुए इन घटनाओं को वे इन दुर्व्यवस्थाओं का अनिवार्य परिणाम ही मान रहे थे। वे जीवित बच गई 8 वर्ष की छोटी बच्ची के सांसारिक रिश्तों पर विचार करके यह नतीजा निकालना चाहते थे, कि अब इस बच्ची की इज्जत बचाने वाला व इसकी देखरेख करने वाला संसार में कौन है? क्या रक्तपिता? वह तो मर चुका है। क्या माँ? वह भी मर चुकी है। क्या भाई? वह भी मर चुका है। क्या बहन? वह भी मर चुकी है। क्या पड़ोसी? अगर वे ऐसे होते तो यह परिवार ज़हर ही क्यों खाते? क्या सरकार? सरकार बच्ची से शर्त रखेगी- 'काम के बदले अनाज'! क्या परमपिता, ईश्वर? उसी ने तो बच्ची को बुरे कर्मों का फल दिया है?

इस उहापोह में पाँचवा दिन भी बिना कुछ खाये बीत गया। पाँचवे दिन उनका छोटा भाई जो उन दिनों मेरठ में एम0 बी0 बी0 एस0 का कोर्स कर रहा था, बहुत घबरा गया। वह उनके किसी ऐसे परिचित के पास गया, जिसके बारे में उसे आशा थी कि वह भोजन करने के लिए उनको राज़ी कर सकते थे। उसे आशंका थी कि उसकी किसी गलती के कारण नाराज़ होकर वे भोजन नहीं कर रहे थे। उनके उम्रदराज़ मित्र को जब उनकी मानसिक अवस्था के बारे में पता चला, तो उन्होंने बिना उनसे पूछे ही मेरठ के जिलाधीश को यह पत्र लिख दिया कि श्री गांधी गत 5 दिनों से आमरण अनशन पर हैं, उनकी मांग है कि जो परिवार मवाना मेरठ में आत्महत्या किया, उस परिवार में जीवित बच गई छोटी बच्ची को इज्जत के साथ जीने के लिए आर्थिक सुरक्षा के तौर पर कुछ नियमित रकम दिया जाये। जिलाधीश ने उन्हें फटकारते हुए कहा कि " ऐसे भरत गांधी रोज़ मरते हैं; अनशन से पहले नोटिस दिया जाता है"। उन्होंने जिलाधीश को आवेदन करके उनसे चुपचाप बन्द कमरे में अनशन करने की बजाय जिला अधिकारी के कार्यालय के समक्ष अनशन करने को कहा। उनका तर्क था कि आत्महत्या कर चुके परिवार में जीवित बच गई बच्ची उनके अनशन के कारण इज्जत के साथ जीवन जी सकेगी, क्योंकि अनशन के कारण शासन उसकी कुछ आर्थिक मदद कर सकता है। वे यह प्रस्ताव अस्वीकार इसलिए नहीं कर सका, क्योंकि वह बच्ची का शुभचिंतक बन चुका था, और पूरे दिल से स्वीकार इसलिए नहीं कर सकता था कि मौत के दलदल में फंसे हुए तमाम परिवारों पर इस अनशन का कोई अच्छा प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं थी।

पाँचवें दिन के बाद छठे दिन उनकी निजी उलझन एक सार्वजनिक कदम में रूपांतरित हो गई। उनके कुछ परिचितों न्र उन्हें जिलाधिकारी कार्यालय के सामने धरने पर बैठा दिये। वहाँ सातवां दिन बीता, आठवां बीता, नौवां दिन बीता, जिला प्रशासन दसवें दिन तब हरकत में आया, जब जिला अस्पताल के चिकित्सकों की टीम ने यह लिख कर दे दिया कि रक्त, पेशाब शारीरिक परिक्षणों के मुताबिक उनकी किसी भी समय मौत हो सकती है। चिकित्सकों की इस रिपोर्ट के बाद पुलिस हरकत में आई और उनको पुलिस ने कलैक्ट्रेट से शाम को सात बजे गिरफ्तार करके मेडिकल कालेह में भर्ती कराना चाहा। किंतु उनकी निष्ठा व संकल्प तथा मेडिकल रिपोर्ट देखकर मेडिकल कालेज अस्पताल ने भर्ती करने से मना कर दिया और आत्महत्या का मुकदमा बनाकर पुन: उनको अस्पताल लाने या मारपीट कर ज़बरदस्ती भोजन देने की सलाह पुलिस को दिया। पुलिस ने अनशन समाप्त करने के लिए 12 बजे रात ज़बरदस्ती जूस पिलाने का प्रयास किया; शारीरिक उत्पीड़न का प्रयास किया व धमकियां दिया। किंतु पुलिस को उनकी निष्ठा के सामने झुकना पड़ा। इसलिए पुलिस ने 1 बजे रात उनको

पुन: धरना स्थल पर वापस लाकर छोड़ दिया। जिला प्रशासन ने 11वें दिन से लिखा पढी़ शुरु किया। कुछ स्थानीय नेताओं के सहयोग से प्रधानमंत्री राहत कोष से बच्ची के नाम 50 हज़ाय रुपये का चेक श्री गांधी को सौंपा गया, तब तक अनशन का चौदहवां दिन आ चुका था।

अनशन के इस अनुभव मे दौरान उनको समझ में आया कि समाज में कुछ लोग ऐसे हैं जो उनकी तरह न्यायप्रिय लोग हैं, और वे अन्यायकारी अर्थव्यवस्था व राजव्यवस्था बदलने के लिए किसी मिशन का साथ दे सकते हैं। उन्होंने इस अनशन में जीवित बच गई बच्ची के लिए आजीवन रु0 1750 प्रतिमाह की मांग किया, क्योंकि उस समय यह रकम औसत घरेलू क्रयशक्ति की रकम की आधी रकम पड़ती थी। यह रकम उन्होंने इस आधार पर मांगा था कि यह बच्ची रक्तपिता की मौत के बाद राष्ट्रपिता की आर्थिक सुरक्षा कवच में ही इज्जत के साथ जीवित रह सकती थी। राष्ट्रपिता की पुत्री होने के नाते हर महीना कम से कम उसे औसत क्रयशक्ति की आधी रकम का ही उपयोग करने का ही अधिकार मिलना चाहिए, इसलिए उन्होंने कम से कम जितने में वह इज्जत के साथ ही सके वह रकम के लिए आजीवन पेंशन के रूप में मांगा। किंतु उनकी मांग पूरी नहीं हुई, उक्त बच्ची को उसका अधिकार देने की बजाय 50 हज़ार की अनुदान राशि दी गई, जो श्री गांधी को भिक्षा स्वरूप लगी। इसी कारण 50 हज़ार रुपये का चेक अनशन स्थल पर उपस्थित लोगों के लिए विजयोत्सव मनाने लारक लगा, वहीं श्री गांधी को यह चेक फुसलाने का एक ज़रिया लगा। फिर भी उनको यह व्रत स्थगित करना पडा़ क्योंकि चेक प्राप्त हो जाने पर उन लोगों ने व्रत तोड़ने का दबाव उन पर बढा़ दिया जो लोग अनशन के दिनों में उनके दिल के बहुत नज़दीक पहुंच चुके थे। उन लोगों ने सुझाव दिया कि नागरिकों के जन्मजात आर्थिक अधिकार की लडा़ई के लिए आपका जीवित रहना आवश्यक है और इस लडा़ई में अब हम सब लोग आपके साथ हैं। इस तर्क के सामने उनको झुकना पडा़ और अनशन स्थगित करना पडा़।

अनशन के दौरान घटी घटनाओं ने उनको प्रेरित किया कि अब कोई व्यक्ति बिना किसी की जान की कीमत पर जिन्दा रहे, इसका उपाय यही हो सकता है कि विरासत में धन प्राप्त करने का अधिकार कुछ लोगों तक सीमित रखने की बजाय सबको दिया जाये। पुरखों द्वारा कमाई गई सकल घरेलू विरासती सम्पत्ति का किराया ही अब श्री गांधी जैसे व्यक्ति को संकल्प के नाम जीने का साधन बन सकता है।

अनशन के दौरान ही यह भी समझ में आया कि राष्ट्र की सकल घरेलू विरासती आय में सभी नागरिकों को हिस्सा मिले, इस अधिकार को दिलाने का कार्य व जिन लोगों के पास यह रकम औसत से ज्यादा है, उनमें यह रकम वापस दे देने का कर्त्तव्यबोध जगाने का कार्य ही अब उनका रोज़गार होना चाहिए।

आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में कुछ निष्कर्षों का योगदान

श्री भरत गांधी आध्यात्मिक व दार्शनिक प्रश्नों पर सोचने के लिए बाध्य हुए, क्योंकि आज के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक मूल्य इसी तरह के प्रश्नों के पारम्परिक उत्तरों से पैदा हुए हैं। उन्होंने महसूस किया कि यदि इमारत दोषपूर्ण है तो ज़रूर ही यह दोष कहीं न कहीं सिविल इंजीनियरिंग के विज्ञान में है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि जब तक इस विज्ञान की जाँच-पड़ताल नहीं किया जाता, तब तक इमारत को बेहतर बनाना संभव नहीं होगा। इसी बात का ध्यान रखते हुए उन्होंने पदार्थ की उत्पत्ति, जीव की उत्पत्ति, मानव की उत्पत्ति, मानव चेतना के स्वरूप, चेतना के द्वैताद्वैत स्वरूप, मतभेद के कारण, व्यक्ति-समाज-प्रकृति के अंतर्सम्बन्ध.... आदि विषयों पर आत्मचिंतन किया। आत्मचिंतन से निकले निष्कर्ष चूंकि पारम्परिक निष्कर्षों से कुछ अलग थे इसलिए उन्होंने उन्हें लिपी-बद्ध करने के लिए कुछ पुस्तकें लिखा। जिसमें से 'जनोपनिषद' नामक पुस्तक लिखी।

1. जिस घर में ऐसे लोग पैदा हों, उस घर की दुर्दशा होगी, तो लोग भविष्य में ऐसे बच्चों की भ्रूण हत्या कर दिया करेंगे।
2. सुधारकों के जीते जी सुधर का काम होने से अत्याचारी लोगों ने सुधारकों का दुरुपयोग किया है, अपना दुरुपयोग देखकर भी एक मृतक कुछ नहीं कर सकता। धनवान चेले अपने फायदे की चीज़ें निकालकर कर फेंक देते हैं- महापुरुषों को।
3. अत्याचार करने का कानूनी हक जिन्हें मिला हुआ है, उनके खिलाफत करने वाले साधारण आदमी की समाज नहीं सुनता। किंतु असाधारण आदमी की बात सुनने के लिये बाध्य हो जाता है, इसलिए उसकी सुरक्षा का खतरा पैदा होता है। शेरों के नेता हिरनों के नेता की सुरक्षा तभी देंगे, जब पहले से उसे सुरक्षा मिल चुकी होगी।
4. सज्जनता बढती जाती है, और निर्धनता भी बढती जाती है। इसलिए त्यागी, तपस्वी महापुरुषों की उसके अपने संगठन के अमीर लोग नहीं सुनते। संगठन में उसका विवेकाधिकार समाप्त हो जाता है। कुछ महापुरुषों की आंखों के सामने मिशन के विरोधी लोग संगठन व उसके फण्ड पर कब्जा कर लिये। महात्मा गांधी, कांशीराम और जयप्रकाश के समर्थक तो ऐसा ही मानते हैं।